जैन विद्वानों द्वारा हिन्दी में रचित कुछ वैद्यक ग्रन्थ

आचार्य राजकुमार जैन

भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से आयुर्वेद की परम्परा चली आ रही है। वर्तमान में आयुर्वेद के उपलब्ध ग्रंथों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि वैद्यक शास्त्र या आयुर्वेद का मूल स्रोत वैदिक वाङमय है। वेदो में आयुर्वेद सम्बन्धी पर्याप्त उद्धरण मिलते हैं। सर्वाधिक उद्धरण अथर्ववेद में मिलते हैं। इसीलिए आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद माना गया है। आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध ग्रंथ चरक संहिता एवं सुश्रुत संहिता में प्राप्त वर्णन के आधार पर आयुर्वेद की उत्पत्ति (अभिव्यक्ति) सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्माजी द्वारा की गई। ब्रह्मा ने आयुर्वेद का ज्ञान दक्ष प्रजापति को दिया, दक्ष प्रजापति ने अश्विनीकुमारों को आयुर्वेद का उपदेश दिया और अश्विनीकुमारों से देवराज इन्द्र ने आयुर्वेद का ज्ञान ग्रहण किया। इस प्रकार सुदीर्घ काल तक देवलोक में आयुर्वेद का प्रसार हुआ। तत्पश्चात् लोक में व्याधियों से पीड़ित आर्त प्राणियों को रोगमुक्त करने की दृष्टि से मुनिश्रेष्ट भारद्वाज देवलोक में गए और वहां इन्द्र से अष्टांग आयुर्वेद का उपदेश ग्रहण कर पृथ्वी पर उसका प्रसार किया। उन्होंने कायचिकित्सा प्रधान आयुर्वेद का उपदेश पुनर्वसु आत्रेय को दिया, जिनसे अग्निवेश आदि छः शिष्यों ने विधिवत् आयुर्वेद का अध्ययन कर उसका ज्ञान प्राप्त किया और अपने अपने नाम से पृथक् पृथक् संहिताओं का निर्माण किया। इसी प्रकार दिवोदास धन्वन्तरि ने सुश्रुतप्रभृत्ति शिष्यों को शल्यतन्त्र प्रधान आयुर्वेद का उपदेश दिया। उन सभी शिष्यों ने भी अपने अपने नाम से पृथक् पृथक् संहिताओं का निर्माण किया। जिसमें से वर्तमान में केवल सुश्रुत संहिता ही उपलब्ध है। तत्पश्चात् अनेक आचार्यों, विद्वानों और भिषग् श्रेष्ठों द्वारा यह परम्परा विस्तार और प्रसार को प्राप्त कर सम्पूर्ण भारतवर्ष में व्याप्त हुई।

जिस प्रकार वैदिक वाङमय और उससे संबंधित साहित्य में आयुर्वेद के बीज प्रकीर्ण रूप से विद्यमान हैं उसी प्रकार जैन वाङमय और इतर जैन साहित्य में पर्याप्त रूप में आयुर्वेद सम्बन्धी विभिन्न विषयों का उल्लेख मिलता है। इससे भी अधिक एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि जैन धर्म के द्वादशांगों के अन्तर्गत एक उपांग के रूप में स्वतन्त्र रूप से आयुर्वेद को विकास प्राप्त हुआ है। बहुत ही कम लोग इस तथ्य से अवगत हैं कि वैदिक साहित्य और हिन्दू धर्म की भांति जैन साहित्य और जैन धर्म से भी आयुर्वेद का निकटतम सम्बन्ध है। जैन धर्म में आयुर्वेद का क्या महत्व है और उसकी कितनी उपयोगिता है? इसका अनुमान इस तथ्य से सहज ही लगाया जा सकता है कि जैन वाङमय में आयुर्वेद का समावेश द्वादशांग में किया गया है। यही कारण है कि जैन वाङमय में अन्य शास्त्रों या विषयों की भांति आयुर्वेद शास्त्र या वैद्यक विषय की प्रामाणिकता भी प्रतिपादित है। जैनागम में वैद्यक (आयुर्वेद) विषय को भी आगम के अंग के रूप में स्वीकार किया गया है।

प्राचीन भारतीय वाङमय का अनुशीलन करने से ज्ञात होता है कि भारत में आयुर्वेद की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। समय समय पर विभिन्न जैनेत्तर विद्वानों द्वारा प्रचुर रूप से आयुर्वेद सम्बन्धी ग्रंथों की रचना की गई है। वैद्य समाज उन ग्रंथों से भलीभांति परिचित है। किन्तु अनेक जैन विद्वानों ने भी आयुर्वेद सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की है जिनमें दो चार को छोड़कर शेष सभी आयुर्वेद के ग्रंथों से वैद्य समाज अपरिचित है। इसका एक कारण यह भी है, उनमें से अधिकांश ग्रंथ आज भी अप्रकाशित ही पड़े हुए हैं। गत कुछ समय से शोध कार्य के रूप में राजस्थान के जैन मंदिरों में विद्यमान शास्त्र भंडारों का विशाल पैमाने पर अवलोकन किया गया और उनकी वृहदाकार सूची बनाई गई। यह सूची गत दिनों विशाल ग्रंथ के रूप में प्रकाशित की गई है। यह ग्रंथ चार भागों में विभक्त है। इस सूची ग्रंथ के चारों खंडों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि इनमें अनेक ऐसे ग्रंथ विद्यमान हैं जो आयुर्वेद विषय पर आधारित हैं और जिनकी रचना जैनाचार्यों द्वारा की गई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन दर्शन के विभिन्न आगम ग्रंथों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि इनमें भी आयुर्वेद सम्बन्धी विषयों के पर्याप्त उद्धरण विद्यमान हैं। जैन आगम ग्रंथ, स्थानांग सूत्र और विपाक सूत्र आदि में आयुर्वेद के आठ प्रकार (अष्टांग आयुर्वेद), सोलह महारोगों और चिकित्सा सम्बन्धी विषयों का बहुत अच्छा वर्णन प्राप्त होता है। संक्षेप में यहां उनका उल्लेख किया जा रहा है—

आयुर्वेद के आठ प्रकार—१. कौमारशल्य (बाल चिकित्सा), २. काय चिकित्सा (शरीर के सभी रोग और उनकी चिकित्सा), ३. शालाक्य चिकित्सा (गले से ऊपर के भाग में होने वाले रोग और उनकी चिकित्सा–इसे आयुर्वेद में 'शालाक्य तंत्र' कहा गया है), ४. शल्य चिकित्सा (चीर-फाड़ सम्बन्धी ज्ञान जिसे आजकल 'सर्जरी' कहा जाता है—इसे आयुर्वेद में 'शल्य तंत्र' की संज्ञा दी गई है), ५. जिंगोली का विष विघात तंत्र (इसे आयुर्वेद में 'अगदतंत्र' कहा जाता है–इसके अन्दर सर्प, कीट, लूता, मूषक आदि के विषों का वर्णन तथा चिकित्सा एवं विष सम्बन्धी अन्य विषयों का उल्लेख रहता है), ६. भूतविद्या (भूत-पिशाच आदि का ज्ञान और उनके शमनोपाय का उल्लेख), ७. क्षारतंत्र (वीर्य सम्बन्धी विषय और तद्गत विकृतियों की चिकित्सा–इसे आयुर्वेद में "बाजीकरणतंत्र" की संज्ञा दी गई है), ८. रसायन (इसके अन्तर्गत स्वस्थ पुरुषों द्वारा सेवन योग्य ऐसे प्रयोगों एवं विधि-विधानों का उल्लेख है जो असामयिक वृद्धावस्था को रोककर मनुष्य को दीर्घायु, स्मृति, मेधा, प्रभा, वर्ण, स्वरोदार्य आदि स्वाभाविक शक्तियां प्रदान करते हैं)।

इसी प्रकार जैन आगम ग्रंथों में सोलह महारोग—श्वास, कास, ज्वर, दाह, कुक्षिशूल, भगंदर, अलस-भागासीर, अजीर्ण, दृष्टिशूल, मस्तकशूल, अरोचक, अक्षिवेदना, कर्ण वेदना, कण्डु-खुजली, ढकोदर-जलोदर, कुष्ठ-कोढ़ गिनाए गए हैं। रोगों के चार प्रकार बतलाए गए हैं—वातजन्य, पित्त जन्य, श्लेष्म जन्य और सन्निपातजन्य। चिकित्सा के चार अंग प्रतिपादित हैं—वैद्य, औषधि, रोगी और परिचारक। जैनागमानुसार चिकित्सक चार प्रकार के होते हैं— वचिकित्सक, पर चिकित्सक, स्वपर चिकित्सक और सामान्य ज्ञाता। जैन आगमों में प्राप्त विवेचन के अनुसार रोगोत्पत्ति के नौ कारण होते हैं—

१. अतिआहार, २. अहिताशन, ३. अतिनिद्रा, ४. अतिजागरण, ५. मूत्रावरोध, ६. गलावरोध, ७. अध्वगमन, ८. प्रतिकूल भोजन और ९. काम विकार। यदि इन नौ कारणों से मनुष्य बचता रहे तो उसे रोग उत्पन्न होने का भय बिलकुल नहीं रहता। इस प्रकार जैन ग्रंथों में आयुर्वेद सम्बन्धी विषयों का उल्ले प्रचुर रूप से मिलता है, जिससे इस बात की पुष्टि होती है कि जैनाचार्यों को आयुर्वेद शास्त्र का भी पर्याप्त ज्ञान रहता था और वे इस शास्त्र के उत्कृष्ट ज्ञाता थे।

सम्पूर्ण जैन वाङमय का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि उसमें अहिंसा तत्व की प्रधानता है और उसमें अहिंसा को सर्वोपरि प्रतिष्ठापित किया गया है। आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति में यद्यपि आध्यात्मिकता को पर्याप्त रूपेण आधार मानकर वही भाव प्रतिष्ठापित किया गया है और उसमें यथा सम्भव हिंसा को वर्जित किया गया है, किन्तु कतिपय स्थलों पर अहिंसा की मूल भावना की उपेक्षा भी की गई है। जैसे भेषज के रूप में मधु, गोरोचन, विभिन्न आसव, अरिष्ट आदि का प्रयोग। इसी प्रकार बाजीकरण के प्रसंग में चटक मांस, कुक्कट मांस, हंसशुक्र, मकर शुक्र, मयूर मांस के प्रयोग एवं सेवन का उल्लेख मिलता है। कतिपय रोगों में शूकर मांस, मृग मांस तथा अन्य पशु-पक्षियों के मांस के सेवन का उल्लेख मिलता है। ऐसे प्रयोगों से आयुर्वेद में अहिंसा भाव की पूर्णतः रक्षा नहीं हो पाई है। अतः ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक ही था जिससे जैन साधुओं के लिए इस प्रकार का आयुर्वेद और उसमें वर्णित चिकित्सा उपादेय नहीं हुई। जैन साधुओं के अस्वस्थ होने पर उन्हें केवल ऐसे प्रयोग ही सेवनीय थे जो पूर्णतः अहिंसक, अहिंसाभाव प्रेरित एवं विशुद्ध रीति से निर्मित हों। जैनाचार्यों ने इस कठिनाई का अनुभव किया और उन्होंने सर्वांग रूपेण आयुर्वेद का अध्ययन कर उसमें परिष्कार पूर्वक अहिंसा भाव को दृष्टिगत रखते हुए आयुर्वेद सम्बन्धी ग्रंथों की रचना की। वे ग्रंथ जैन मुनियों के लिए उपयोगी सिद्ध हुए। जैन गृहस्थों ने भी उनका पर्याप्त लाभ उठाया। इसका एक प्रभाव यह भी हुआ कि जैन साधुओं, साध्वियों, श्रावक एवं श्राविकाओं को चिकित्सार्थ जैन साधुओं-विद्वानों को भी चिकित्सा कार्य में प्रवृत्त होना पड़ा।

कुछ समय पहले दिगम्बर भट्टारकों ने वैद्यक विद्या को ग्रहण कर चिकित्सा कार्य प्रारम्भ किया, कालान्तर में श्वेताम्बर जैन यतियों ने इसमें अत्यन्त दक्षता प्राप्त की। बाद में ऐसा समय भी आया कि उनमें क्रमशः शिथिलता आती गई। दिगम्बर आचार्यों और विद्वानों ने जिन आयुर्वेद के ग्रंथों का निर्माण किया है वे अधिकांशतः प्राकृत-संस्कृत भाषा में रचित हैं। चूंकि उन ग्रंथों के रख रखाव एवं प्रकाशन आदि की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया गया, अतः उनमें से अधिकांशतः नष्ट या लुप्तप्राय हो चुके हैं। जो बचे हुए हैं उनके विषय में जैन समाज की रुचि न होने के कारण अज्ञात हैं। श्वेताम्बर विद्वानों द्वारा जो ग्रंथ रचे गए हैं वे अधिकांशतः गत चार सौ वष से अधिक प्राचीन नहीं हैं। अतः उनकी रचना हिन्दी में दोहा-चौपाई आदि के रूप में की गई है। इस प्रकार के ग्रंथों में योग चिन्तामणि, वैद्यमनोत्सव, मेघविनोद, रामविनोद, गंगयति निदान आदि हिन्दी वैद्यक ग्रंथों का प्रकाशन हो चुका है।

संस्कृत के वैद्यकग्रंथों में पूज्यपाद विरचित "वैद्यसार" और उग्रदित्याचार्य विरचित "कल्याण कारक" नामक ग्रंथों का भी हिंदी अनुवाद सहित प्रकाशन हो चुका है। इनमें "वैद्यसार" के विषय में विद्वानों का मत है कि वह वस्तुतः पूज्यपाद की मौलिक कृति नहीं है, किसी अन्य व्यक्ति ने उनके नाम से इस ग्रंथ की रचना की है।

हिन्दी में रचित वैद्यक ग्रंथों का परिचय

१. वैद्य मनोत्सव

यह ग्रंथ पद्यमय रूप से निबद्ध है और दोहा, सोरठा व चौपाई छन्दों में इसकी रचना की गई है। इससे इस ग्रंथ के रचनाकार का कवि होना प्रमाणित होता है। इस ग्रंथ के रचयिता कविवर नयन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुख हैं जो राजा के पुत्र थे। उन्होंने इस ग्रंथ की रचना संवत् १६४१ में की थी। ग्रंथ में प्राप्त उल्लेख के अनुसार अकबर के राज्य में सीहनंद नगर में चैत्र शुक्ला द्वितीया (सं. १९४१) को उन्होंने इस ग्रंथ की रचना पूर्ण की। ग्रंथ के आरम्भ में "श्रावक कुल ही निवास लिखकर उन्होंने अपना श्रावक होना प्रतिपादित किया है। ग्रंथ का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि यह ग्रंथ किसी अन्य ग्रंथ का अनुवाद मात्र नहीं है, अपितु मौलिक रूप से इसकी रचना पद्य निवद्ध रूप से की गई है। संपूर्ण ग्रंथ में आद्योपान्त रचना की मौलिकता का सहज ही आभास मिलता है। इतना अवश्य है कि कवि ने अनेक वैद्यक ग्रंथों का अध्ययन एवं मनन करने के उपरान्त ही इसकी रचना की है। आयुर्वेद विषय में कवि का पूर्ण अधिकार होना इस कृति द्वारा स्पष्ट है। कवि के द्वारा ग्रंथ के आदि में जो मंगलाचरण किया गया है उससे भी यह बात स्पष्ट है कि ग्रंथ रचना से पूर्व कवि ने आयुर्वेद शास्त्र का गहन अध्ययन किया है, अनेक ग्रंथों का मनन किया है और उससे अर्जित ज्ञान को अनुभव द्वारा परिमार्जित किया है।

यह सम्पूर्ण ग्रंथ कुल सात समृद्ध खंडों में विभक्त है। इसमें कुल ३३२ गाथाएं हैं। इस ग्रंथ की एक अन्य प्रति में आद्यन्त मंगलाचरण रहित अनेक आयुर्वेद ग्रंथों के प्रमाण सहित १६७ गाथाओं का एक और ग्रंथ है। उसके अन्त में भी "इति वैद्यमनोत्सवे" लिखा है। ये दोनों ग्रंथ दोहा, सोरठा एवं चौपाई में रचे गए हैं। इनमें से एक ग्रंथ प्रकाशित हो चुका है। किन्तु वह भी अब सम्भवतः उपलब्ध नहीं है।

२. वैद्य हुलास

इसका दूसरा नाम "तिब्ब सहाबी" भी है। इसका कारण यह है कि लुकमान हकीम ने फारसी में "तिब्ब साहाबी" नामक जिस ग्रंथ की रचना की है उसी का यह हिन्दी पद्यानुवाद मात्र है। "तिब्ब साहाबी" एक प्रामाणिक एवं महत्वपूर्ण ग्रंथ माना जाता है। अतः ऐसे ग्रंथ का अनुवाद निश्चय ही उपयोगी साबित होगा। हिकमत के फारसी ग्रंथों का अनुवाद उर्दू भाषा में तो हुआ है, किन्तु हिन्दी में वह कार्य बिल्कुल नहीं हुआ। ऐसी स्थिति में यह एक साहसिक प्रयास ही माना जायगा कि हिकमत विषय प्रधान ग्रंथ का हिन्दी भाषा में अनुवाद हो वह भी पद्यमय शैली में। इस ग्रंथ के अनुशीलन से अनुवादक का फारसी भाषा का विद्वान होना और हिन्दी भाषा पर पूर्ण अधिकार होना निर्विवाद रूप से सिद्ध होता है। अनुवादक में कवित्व प्रतिभा का विद्यमान होना भी असंदिग्ध है। इसके अतिरिक्त हिकमत विद्या और वैद्यक शास्त्र का उनका विद्वान होना भी सिद्ध होता है।

इस ग्रंथ के रचयिता कवीवर मूलक हैं। 'श्रावक धर्मकुल को नाम मलूकचन्द्र" इन शब्दों के द्वारा अनुवादक ने अपने नाम का उल्लेख किया है। ग्रंथ के आदि में किए गए मंगलाचरण के अनन्तर लेखक ने उपर्युक्त रूप से संक्षेपतः अपना उल्लेख किया है, अपना व्यक्तिगत विशेष परिचय कुछ नहीं दिया। यही कारण है कि कवि का कोई विशेष परिचय प्राप्त नहीं होता। इस ग्रंथ में अन्य ग्रंथों की भांति अन्तः प्रशस्ति भी नहीं है। इससे ग्रंथ रचना का काल और रचना स्थान दोनों अज्ञात हैं। यह ग्रंथ आदि से अन्त तक एक ही प्रवाह में रचित है, अन्य वैद्यक ग्रंथों की भांति खण्डशः विभक्त या अध्यायों में विभाजित नहीं है, अथवा मूल ग्रंथ तिब्ब साहाबी खण्डशः विभक्त न होने और एक ही प्रवाह में निबद्ध होने के कारण उसका भावानुवाद भी एक ही प्रवाह में निबद्ध है। इस ग्रंथ गाथाओं की कुल संख्या ५१८ है।

३. रामविनोद

इस ग्रंथ के रचयिता कविवर रामचन्द्रजी हैं। यह ग्रंथ सुललित पद्यमय शैली में विरचित है। इससे लेखक की कवित्व प्रतिभा का सहज ही आभास मिल जाता है। जिस समय इस ग्रंथ की रचना की गई थी उस समय जन सामान्य के लिए संस्कृत एक दुरूह और दुर्गम भाषा मानी जाती थी। उस समय आयुर्वेद के प्रायः सभी प्रमुख ग्रंथ संस्कृत भाषा में ही निबद्ध थे। अतः जन सामान्य के लिए उनका अध्ययन कर ज्ञान प्राप्त करना सम्भव नहीं था। कविवर रामचन्द्रजी ने उस समस्या को समझा और तत्कालीन प्रचलित आयुर्वेद के कतिपय प्रमुख ग्रंथों—चरक संहिता, सुश्रुत संहिता, अष्टांग हृदय, योगचिन्तामणि, राजमार्तण्ड, रसचिन्तामणि आदि के आधार पर जन सामान्य की सुगम भाषा शैली में "राम विनोद" नामक ग्रंथ की रचना की।

इस ग्रंथ की रचना सं. १७२० में मार्गशीर्ष शुक्ल त्रयोदशी बुधवार को अवरंगशाह (औरंगजेब) के राज्यकाल में पंजाब के बन्नु देशवर्ती शक्की शहर में की गई। यह ग्रंथ सात समुद्र देशों में विभक्त है और इसमें कुल १९८१ गाथाएं (दोहा, सोरठा, चौपाई) लिखी गई हैं। ग्रंथ समाप्ति के बाद भी इसमें ५३ गाथाएं और हैं जिनमें ३९ गाथाएं नाड़ी परीक्षा सम्बन्धी और १३ गाथाएं मान प्रमाण सम्बन्धी हैं।

कविवर रामचन्द्रजी ने अपना कोई विशेष परिचय नहीं दिया है, मात्र अपनी गुरु परम्परा का उल्लेख किया है जो निम्न प्रकार है—खरतरगच्छीय जिनसिंह सूरि के शिष्य पद्मकीर्ति थे, पद्मकीर्ति के शिष्य पद्मरंग थे और पद्मरंग के शिष्य कविवर रामचन्द्र थे जिनके द्वारा इस ग्रंथ की रचना की गई है। इस परम्परा के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्तिगत विवरण का उल्लेख न होने से उनके व्यक्तिगत जीवन का परिचय अज्ञात है। इस ग्रंथ की रचना के पश्चात् ग्रन्थकार ने "वैद्यविनोद" नामक एक अन्य ग्रंथ की रचना भी की थी, जिसके विषय में ग्रंथ के अन्त में प्रशस्ति में कवि ने निम्न प्रकार से उल्लेख किया है—

पहली कीनो राम विनोद। व्याधिनिकन्दन करण प्रमोद।
वैद्य विनोद यह दूजा किया। सजन देखि खुशी होई रहिया॥

इस प्रकार कविवर रामचन्द्र द्वारा रचित दो कृतियों का उल्लेख मिलता है। अन्यान्य पुस्तकालयों में ये दोनों प्रतियां वर्तमान में उपलब्ध होती हैं।

४. वैद्य विनोद

जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है कविवर रामचन्द्र की यह दूसरी कृति है। इस ग्रंथ की रचना भी सरल पद्यमय शैली में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवित्त, दोहा और चौपाई के रूप में की गई है। यह ग्रंथ वस्तुतः कोई मौलिक कृति न होकर आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'शार्ङ्गधर संहिता' का हिन्दी पद्यानुवाद है। अतः यह एक अनुवाद रचना है। किन्तु पद्यमय शैली में विरचित होने के कारण भाषा की दृष्टि से तो इसकी मौलिकता है ही। यह सम्पूर्ण ग्रंथ तीन खण्डों में विभक्त है और प्रत्येक खण्ड में क्रमशः ७, १३ और १३ अध्याय हैं। इन तीनों खण्डों में कुल मिलाकर २५३५ गाथाएं (कवित्त, दोहा, चौपाई) हैं। ग्रंथ की भाषा सरल और सुबोध है।

इस ग्रंथ की रचना संवत १७२६ में वैसाख सुदी १५ को मरोट-कोट नामक स्थान में की गई थी जो समय औरंगजेब के राज्य में विद्यमान था।

५. काल ज्ञान

यह ग्रंथ भी एक अनुवाद रचना है जो वैद्य शम्भुनाथ कृत ग्रंथ का पद्यानुवाद है। इस ग्रंथ की रचना ७१८ पद्यों में की गई है जिसमें दोहे, चौपाई, सोरठा आदि हैं। इसके रचयिता कविवर लक्ष्मी वल्लभ हैं जो खरतरगच्छ की अठारहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध विद्वानों में हैं। इनके द्वारा रचित संस्कृत के कल्पसूत्र व उत्तराध्ययन सूत्र की टीका इनकी विद्वत्ता की द्योतक है। संस्कृत भाषा में आपका पाण्डित्य होने के कारण ही आप इस प्रकार के महत्वपूर्ण ग्रंथों की टीका करने में समर्थ हो सके हैं। इसके अतिरिक्त आपने हिन्दी व मारवाड़ी-राजस्थानी भाषा में कई रास आदि की भी रचना की है, जिसकी प्रतियां बीकानेर के जैन भण्डारों में उपलब्ध हैं।

आपके द्वारा रचित 'कालज्ञान' नामक ग्रंथ यद्यपि एक अनुवाद रचना है, तथापि वैद्यक विषय सम्बन्धी आपके गम्भीर ज्ञान की झलक सहज ही मिल जाती है। इस ग्रंथ की भाषा शैली सुललित एवं प्रवाहमय है। इसका रचना काल सं. १७४१ है।

६. कवि प्रमोद

हिन्दी पद्यानुवाद रचनाओं में इस ग्रंथ का महत्वपूर्ण स्थान है। आकार और पद्य संख्या की दृष्टि से जैन विद्वानों द्वारा रचित पद्यमय ग्रंथों में यह सब से बड़ी रचना है। इस ग्रंथ में २९४४ पद्य हैं जो कवित्त, चौपाई, दोहा आदि के रूप में निबद्ध हैं। इसकी प्रतियां पंजाब के नकोदर भण्डार में (क्रम संख्या ४४३) पाटण व बीकानेर के जैन ज्ञान भण्डारों में भी उपलब्ध है। इस ग्रंथ की रचना संवत् १७५३ में लाहौर में की गई थी। यह रचना प्रशस्त एवं उत्कृष्ट कोटि की है। इसकी भाषा सरल एवं सुबोध है। इस ग्रंथ के अध्ययन से लेखक की विद्वत्ता का आभास तो मिलता ही है, आयुर्वेद के उनके गहन अध्ययन का भी आभास मिलता है।

इस ग्रंथ के रचयिता कवि मान हैं जो खरतरगच्छीय सुमति मेर विनय मेर के शिष्य थे। आप मूलतः बीकानेर के निवासी थे।

७. कवि विनोद

इस ग्रंथ की रचना भी कविवर मान द्वारा ही की गई थी। इसका रचनाकाल १७४१ है। यह ग्रंथ भी सरल और सुबोध भाषा में रचित है। आयुर्वेद सम्बन्धी विषयों का ही इसमें प्रतिपादन है। यह ग्रंथ भी कवित्त, चौपाई, दोहा आदि में रचित है तथा रचना प्रशस्त है।

८. रस मंजरी

यह ग्रंथ पूर्ण रूप से उपलब्ध नहीं होता है। फुटकर रूप से कई अंतपल बीकानेर के महिमा भक्ति-ज्ञान भण्डार (नं. ८७) में हैं और केवल कुछ अंतपल ही बीकानेर में श्री अगरचन्दजी नाहटा के निजी संग्रह में हैं। इसका अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि इस रसमंजरी ग्रंथ के रचयिता खरतरगच्छीय मतिरत्न के शिष्य 'समरथ' हैं। इस ग्रंथ का रचनाकाल सम्वत् १७६४ है। इस सम्पूर्ण ग्रंथ की रचना चौपाई छन्दों में की गई है। इसकी भाषा सरल और सुबोध है।

९. मेघ विनोद

यह ग्रंथ आयुर्वेद की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है। यह एक चिकित्सा प्रधान ग्रंथ है और इसमें विभिन्न रोगों के लिए अनेक योगों का उल्लेख किया गया है। इसमें चिकित्सीय योगों का संकलन होने से यह ग्रंथ चिकित्सा की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस ग्रंथ की एक मूल प्रति 'मोतीलाल बनारसीदास' प्रकाशन संस्था के मालिक श्री सुन्दरलालजी जैन के पास गुरुमुखी लिपि (पंजाबी भाषा) में थी, जिसका उन्होंने हिन्दी में अनुवाद कराकर अपने यहां से ही प्रकाशन कराया है। इस प्रकार अनूदित होकर यह ग्रंथ प्रकाशित हो चुका है। इसका अनुवाद गद्य शैली में ही हुआ है। इस ग्रंथ की रचना का समय फाल्गुन सुदी १३, सम्वत् १८३५ है।

इस ग्रंथ के रचयिता कविवर मुनि मेघविजय हैं जो यति थे और हिन्दी के बहुत अच्छे कवि थे। इनका उपाश्रय फगवाड़ा नगर में था। इस ग्रंथ की रचना का स्थान फुगुआगर है जो फगवाड़ा के अन्तर्गत ही था। फगवाड़ा नगर तत्कालीन कपूरथला स्टेट के अन्तर्गत आता था।

मुनि मेघराज कृत तीन ग्रंथ उपलब्ध होते हैं— १. दानशील तपभाव (भण्डार नं. ६८८, संवत् १८७६), २. मेघमाला (सं. १८१७) और ३. मेघ विनोद। मेघमाला में कवि की गुरु परम्परा का उल्लेख मिलता है, जो निम्न प्रकार है—उत्तरगच्छ (जो कि लोकागच्छ की शाखा थी और उत्तर प्रान्त में जाने के कारण आंचगच्छ के नाम से प्रसिद्ध हुई) के श्री जटमल के शिष्य परमानन्द थे। परमानन्द के शिष्य श्री सदानन्द हुए। सदानन्द के शिष्य श्री नारायण, नारायण के शिष्य श्री नरोत्तम, नरोत्तम के शिष्य श्री मायाराम और उनके शिष्य श्री मेघमुनि थे।

गत दिनों "आत्मानन्द शताब्दी स्मारक ग्रंथ" प्रकाशित हुआ था। उसके हिन्दी खण्ड में पृष्ठ १५७ पर स्व.डा. बनारसीदास जैन का "पंजाब के जैन भण्डारों का महत्व" शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ था। उस लेख में कलिकी गुरु परम्परा तथा अन्य कृतियों का जो उल्लेख किया गया है उसके अन्तर्गत मेघमुनि और उनकी उक्त कृतियों का भी उल्लेख है। (शेष पृष्ठ १८३ पर)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org